शिक्षित समुदाय में दलितों की सामाजिक स्थिति और अस्मिता का प्रश्न

सपना (शोधार्थी)

म्दतवससउमदज छव. श्रटत–स्ध्24ध्13069

प्रो. राजबाला (शोधनिर्देशक)

ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान

सार

हमारा भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था में आबद्ध भेद–भाव का एक भद्दा प्रतिरूप दीर्घकाल से पेश करता आ रहा है। वैसे तो लगभग हर देश की सामाजिक व्यवस्था कुछ इसी प्रकार के अनुचित भेदों से ग्रस्त है। क्योंकि खुद को दूसरों से बेहतर साबित करने की जो प्रवृत्ति है वह लगभग हर समाज का अंश रही है चाहे वह रंग को लेकर हो, शारीरिक संरचना को लेकर हो, धर्म को लेकर हो, या जाति को लेकर हो। परस्पर यह भावनाएं बनी रहती है। सही मायने में भेद होना आवश्यंभावी है। यह भेद समाज को प्रगति की राह पर अग्रसर करने में अपनी भूमिका निभाता है लेकिन वास्तव में यह भेद होना चाहिए हमारी समझ, जानकारियों, विवेक और बुद्धिमत्ता का।

जाहिर सी बात है जो व्यक्ति कम जानकारी रखता है वह लोगों में कम लोकप्रिय होता है लेकिन जिसका दायरा अधिक सर्वव्यापी है वह लोगों के आकर्षण का केंद्र बन जाता है। इस भेद को व्यक्ति परिश्रम करके सदा के लिए मिटा सकता है। भेद वहीं तक अपना अस्तित्व रखता है जहां तक उसे मिटाना संभव होता है। जहां भेद मिट नहीं सकता वहां वह अभिशाप बन जाता है। यदि बुद्धि–विवेक को लेकर असमानताएं हैं तो एक हद तक मिटाई जा सकती है। लेकिन किसी के रंग, उसकी जाति और धर्म को लेकर उसे अकारण ही नीच मान लेना उचित नहीं। क्योंकि यहां वह कुछ भी बदलने योग्य स्थिति में नहीं रहता।

वह चाहकर भी उस जाति को नहीं बदल सकता जो सदियों से दलित, अस्पृश्य और घृणित है। इसपर उसका जरा भी जोर नहीं रहता। यहां प्रश्न है व्यक्ति की अस्मिता का, जो दलित है इसलिए नहीं कि उसने कोई ऐसा काम किया है जिससे कि समाज ने उसे इस उपाधि से नवाजा, बल्कि इसलिए क्योंकि वह उस तथाकथित सामाजिक व्यवस्था में जन्मा है जहां उसके जन्म लेते ही उसे नीच मान लिया जाता है। यदि मनुष्य को मौका ही ना दिया जाए खुद को साबित करने का तो फिर सामाजिक व्यवस्था बदलेगी कैसे? वह कैसे साबित करेगा की वह नीच नहीं है, अछूत नहीं है वह भी तुममें से एक है।

मुख्य शब्द

वर्ण व्यवस्था, भेद, बुद्धिमत्ता, प्रगति, अभिशाप, अस्पृश्य, सामूहिक एकता, शिक्षा, संगठन, विज्ञान, आरक्षण

प्रस्तावना

वर्ण व्यवस्था के संस्थापक उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग से घृणा करना चाहते हैं। उनकी व्यवस्था में निम्न वर्ग उनसे संबंध बनाने योग्य नहीं हैं। यह बताने वाले और इस व्यवस्था को बनाने वाले वे स्वयं हैं। साथ ही मनुस्मृति जैसे तमाम धार्मिक सामाजिक ग्रंथों के निर्माता ये तथाकथित उच्च जाति के लोग हैं। इन्होंने स्वयं को धर्म का संरक्षक कहकर धर्मग्रंथ लिखने के स्थान पर समाज में भेद की लकीर खींचने का कार्य किया, जो लकीर आज तक किसी के मिटाए नहीं मिट पाई है। अपितु शिक्षित समाज भी बिना किसी तर्क के इस व्यवस्था का आंखें मूंदकर अंधानुकरण किए जा रहा है। जब व्यवस्था के इन संस्थापकों ने इसे बनाने का कार्य अपने हाथों में लिया होगा तो जाहिर सी बात है खुद को सबसे ऊपर रखने के लिए वे स्वतंत्र रहे होंगे। यदि उन्हें खुद को ऊंचे पद पर रखने का स्वर्ण अवसर मिल रहा है तो वह उसका सौ प्रतिशत लाभ भी उठाएंगे। क्योंकि जिसकी हुकूमत होती है सिक्का भी उसी के नाम का चलता है।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि ब्राह्मणों के स्थान पर यदि कोई दलित सामाजिक व्यवस्था का ढांचा तैयार करता तो वह भी खुद को किसी अच्छे पद पर विराजमान करता और जो

विचारधारा आज मौजूद है वह नहीं होती। लेकिन उन्हें ये मौका मिला नहीं और वे लोगों की नजरों में दलित बने रहे।

दलित समाज में आंतरिक संरचना और सामाजिक यथार्थ

विडंबना इस बात में है कि जो दलित वर्ग सबसे नीचे आता है आज उसी दलित समुदाय में अनेक उपदलित जातियों का जन्म हुआ है। इनमें भी सबसे ऊंचे दलित और फिर उनसे नीचे अन्य अनेक जातियां अस्तित्व में आई हैं। इस तरह ऊंचनीच की भावना दलितों में भी विद्यमान है। कावेरी द्वारा लिखित आत्मकथा "टुकड़ा–टुकड़ा जीवन" के संदर्भ में जब हम दलित जीवन की रूपरेखा को समझने का प्रयास करते हैं तो पाते हैं कि जन्म से ही दलित होना लोगों के जीवन का हिस्सा बन जाता है। लेकिन बालपन में अक्सर बच्चे इन बातों से अनभिज्ञ रहते हैं कि कौन ऊंचा है और कौन नीचा, क्योंकि समाज द्वारा बनाई गई व्यवस्था को समझ पाना उनके लिए थोड़ा मुश्किल होता है।

जब तक कि वे खुद उसे अनुभव नहीं कर लेते तब तक उससे अनजान बने रहते हैं। इसपर कावेरी का कथन है दृ

"मेरा बचपना यह स्वीकार नहीं कर पाया कि सवर्णों के बच्चों का छुआ पानी शिक्षक पी ले और मुझसे बाल्टी छुआने पर मुझे चांटा जड़ दे।"

इस तरह की घटनाएं आमतौर पर अपने दैनिक जीवन में हम सुन ही लेते हैं। खासकर ग्रामीण सरकारी विद्यालयों में बालकों के साथ इस तरह का भेद देखा जाता है। कई बार सवर्णों के पानी के बर्तनों या कोई सामान छू लेने पर शिक्षकों की डांट या मार का भी शिकार बच्चों को होना पड़ता है।

शिक्षा, संगठन और संघर्ष का प्रश्न

इन चीजों से बालमन में हीन भावनाओं का विकास होता है और वह ना चाहते हुए भी खुद को दूसरे बच्चों की तुलना में घृणित महसूस करता है। साथ ही व्यवस्था के नियमों को मान लेना ही उचित समझते हैं क्योंकि इसके विरुद्ध लड़ने की स्थिति में वह नहीं होते। इसी तरह व्यवस्था की जड़ें मजबूत हुई और उसमें लचीलापन समाप्त हो गया। आज जो

दलित शिक्षित समाज उभर रहा है उसने भले ही समाज में अपनी अलग पहचान बना ली है मगर उसने खुद को अपने समुदाय से काट लिया है। शिक्षा ग्रहण कर वह अपने दलित समाज के लिए कुछ कर पाने के विचार को ज्यादा समय तक जिंदा नहीं रख सका।

लेखिका ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं दृ

"ये पढ़े लिखे अपने जाति समाज से दूर सवर्णों के हेठी से दूर स्वयं में सिमट गए हैं। घर में बंद अपने बाल–बच्चों के साथ ही समय गुजरता है। ऐसे में नए भारत की कल्पना करना मूर्खता है।"

कावेरी लिखती हैं दृ

"मुझे लगा शिक्षा से ही समाज बदल सकता है। डॉ. अम्बेडकर के तीन मूलमंत्र एकदम सार्थक हैं दृ शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो।"ङ

शिक्षित समाज में जातिगत अनुभव

आज भले ही विज्ञान ने बहुत तरक्की कर ली है और देश–विदेश में नवीन तकनीकों को जन्म दिया है लेकिन भारत की सामाजिक व्यवस्था को ठस से मस करने की ताकत स्वयं विज्ञान भी नहीं जुटा पाया है। भारत का शिक्षित समुदाय भी अपने पूर्वजों द्वारा बनाई गई व्यवस्था को चुनौती नहीं दे पाया है।

लेखिका का अनुभव कहता है दृ

"शिक्षिका प्रशिक्षण के हॉस्टल में आकर मुझे जाति दंश का शिकार होना पड़ा। अभी तक इस माहौल से पाला नहीं पड़ा था। यहां आते ही अपने अस्तित्व का पता लगा।"[4]

एक अन्य अनुभव में कावेरी लिखती हैं कि ब्राह्मण सेक्रेटरी के घर सभी शिक्षकों को बुलाया गया जहां उन्हें बाकी लोगों से अलग और गंदे कप में चाय दी गई। यह घटना इस बात को स्पष्ट करती है कि भारतीय समाज में जाति आधारित दृष्टिकोण कितनी गहराई तक समाया हुआ है।

"जातीय गंध इतना बदबूदार है अंगड़े के बच्चों को परिचय की जरूरत नहीं होती। उनके सरनेम ही एक बड़ा हथियार है। पाण्डे, सिंह, शर्मा, भला दलित के बच्चों को क्यों हौंसला बढ़ाते।"[5]

आरक्षण और सामाजिक दृष्टिकोण

आजकल शिक्षित समाज में आरक्षण का मुद्दा बड़ा जोर पकड़ रहा है। जिस पर हर किसी की अपनी मानसिकता है। आरक्षण की परिकल्पना वास्तव में पिछड़े वर्गों के लिए वरदान साबित हुई है, जिससे समाज का पिछड़ा वर्ग भी सवर्णों के बीच दिखाई देने लगा है।

लेखिका का इस विषय पर वक्तव्य है दृ

"सवर्ण शिक्षकों से भी अधिक सर्वगुणसंपन्न के बावजूद भी हेय दृष्टि से देखा जाता। आरक्षण शब्द को कटार बना घायल किया जाता।"[6]

"यह कटु सत्य है कि दलित आज के दौर में उभरे हैं तो आरक्षण के बदौलत ही। यदि डॉ. भीमराव अम्बेडकर नहीं होते या संविधान सवर्ण लिखा होता तो सदियों से शोषित उपेक्षित दलित को नरक की जिंदगी जीना पड़ता।"[7]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि किसी भी नकारात्मक विचारधारा को बदलने में समय की बड़ी महती भूमिका होती है। समय के साथ चीजों में सकारात्मक परिवर्तन होने लगते हैं। आज से साठ वर्ष पूर्व दलितों की जो स्थिति थी आज उसमें काफी हद तक सुधार देखा जा सकता है। पहले की मानसिकता में दलितों की परछाई तक को अछूत माना जाता था। लेकिन आज शिक्षा के बदौलत हर उस क्षेत्र में हम उन्हें देख सकते हैं जहाँ उच्च जाति के लोग मौजूद हैं। यह स्वीकार करना होगा कि परिवर्तन हुआ है, भले ही धीरे–धीरे ही सही।

यदि भारतीय समाज भावनाओं के स्थान पर तर्क से काम ले तो इस भेद को सदा के लिए मिटाया जा सकता है। शिक्षा ही वह शस्त्र है जिससे समाज की तस्वीर बदली है और बदल सकती है।

संदर्भ सूची

कावेरी (2017), टुकड़ा–टुकड़ा जीवन (आत्मकथा), स्वराज प्रकाशन, पृष्ठ 7

वही, पृष्ठ 86

वही, पृष्ठ 29

वही, पृष्ठ 23

वही, पृष्ठ 94

वही, पृष्ठ 87

वही, पृष्ठ 132